'मरण त्यौहार के गायक' 'एक भारतीय आत्मा' को 'अपने गीतों के प्रणाम' भेजने वाले कवि श्री० नर्मदा प्रसाद खरे प्रेम, सौन्दर्य और समर्पण के कवि हैं। उनकी अनुभूतियाँ जिस पुलकित भावना के साथ 'सृष्टि की सौन्दर्य-सुषमा' का साक्षात्कार करती हैं उसी तल्लीन चेतना के साथ 'तम के पार' लहराने वाले 'ज्योति के सागर' के रहस्य-संकेतों का मर्म भी पढ़ लेती हैं। 'अनुभूतियों का स्वतः द्रवीकरण' होने के कारण खरे जी के काव्य में भावना की मोहक तरलता, कल्पना की विशद विपुलता एवं अभिव्यक्ति की पारदर्शी स्वच्छता निरन्तर परिलक्षित होती है। जीवन और जगत्, फलतः काव्य के प्रति भी उनका स्वर किसी वादग्रस्त व्यक्ति का नहीं है। वाद विशेष से स्वयं को निर्बन्ध रख सकने की अपनी प्रतिभा के कारण उनके व्यक्तित्व एवं काव्य में ऐसी सौमनस्यता एवं रुचिरता का सन्निवेश हुआ है जिससे उनका व्यक्तित्व सार्थक एवं उनकी कला श्रीसंपन्न बनी है।

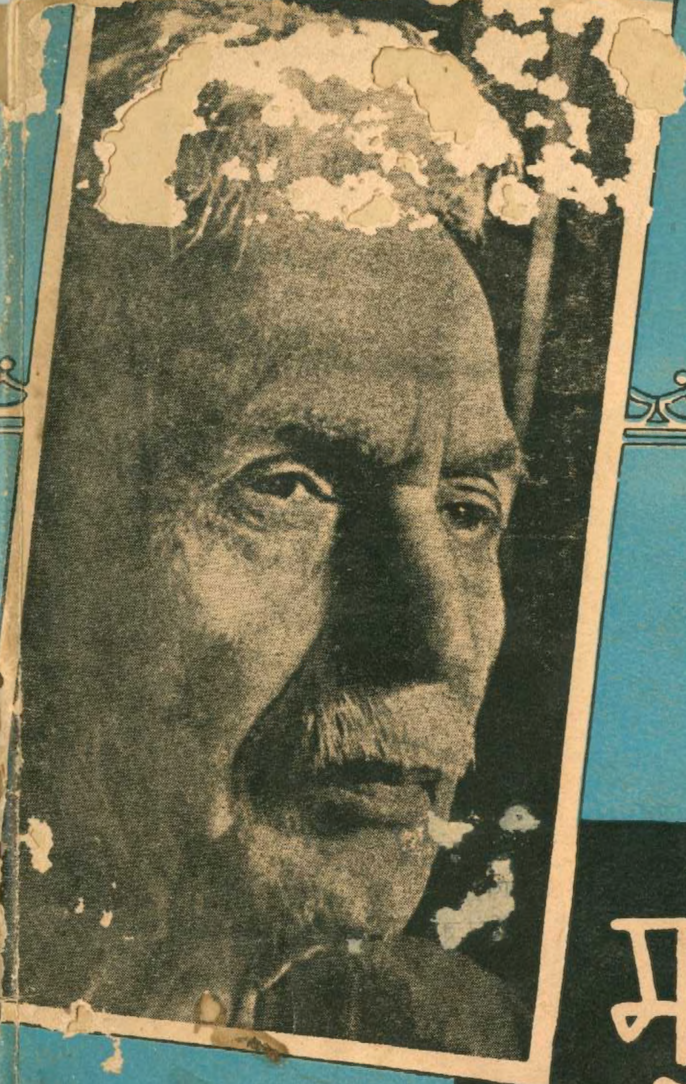


खरे जी विगत तीन दशकों से भी अधिक की अवधि से निरन्तर काव्य रचना कर रहे हैं। सृजन की यह अबाधता स्वयं में कवि की भाव-संपदा एव सजग रचनाशीलता का प्रमाण है। काल की पग-चाप सुन सकने के सामर्थ्य के कारण जहाँ खरे जी के काव्य में निरन्तर परिवर्तित युग-बोध के स्वर ध्वनित होते हैं, वहां उनके सजग कलाकार होने के कारण वह एकरसता अथवा आत्मावृत्ति से भी मुक्त रह सका है। उनके सभी प्रगीत अपनी उठान और उफान, कहन और चुभन में एक निश्चित स्तर का निर्वाह करते हैं। इस अर्थ में वे कवियों की उस कोटि में परिगणित होंगे जो 'पोयट्स आफ फैन्सी' कहलाती है। छायावादी कवियों में उनकी रुचि एवं प्रवृत्ति पंत और महादेवी की प्रतिवेशिनी है और छायावादोत्तर कवियों में बच्चन और नरेन्द्र शर्मा की। हिन्दी का पाल्ग्रेव जब स्वच्छंदतावादी रचनाओं का संकलन करेगा तो खरे जी को छोड़ पाना उसके लिए सहसा संभव नहीं होगा।

'मरण त्यौहार के गायक' के गीत हिन्दी के बलि-पंथी कवि और प्रदेश के काव्य-किरीट स्व० माखनलाल चतुर्वेदी को समर्पित हैं। इसके पहिले भी खरे जी अनेक कृती कवियों का गीतार्चन कर चुके हैं। एक सहज एवं अनौपचारिक आत्मीयता के कारण इन गीतों में ऐसी बेधकता और तल्लीनता आ गयी है जिसका जन्म वैयक्तिक व्यथा एवं हार्दिक संवेदना के बिना हो ही नहीं सकता।

अपनी काव्य-यात्रा में कवि का 'स्वर-पाथेय' अब और भी समृद्ध एवं मनोरम हुआ है—'मरण-त्यौहार के गायक' के गीत इस बात के प्रमाण हैं।

—डा० कान्ति कुमार



मरण-त्यौहार के गायक

नर्मदाप्रसाद खरे

मरण-त्यौहार के गायक



नर्मदा प्रसाद खरे



लोक चेतना प्रकाशन
जबलपुर

प्रथम संस्करण : ४ अप्रैल, १९६९

मूल्य : दो रुपये

केसरवानी प्रेस, इलाहाबाद में मुद्रित

पंक्ति-क्रम



भूमिका

'एक भारतीय आत्मा' पं० माखन लाल जी चतुर्वेदी, सचमुच ही, भारत की आत्मा, बहुत से बूढ़ों और नौजवानों के प्रेरणा-स्रोत तथा साहित्य की शोभा और श्रृंगार थे। उनके स्वर्गीय होने का शोक अब तक भी कई हृदयों में ताजा है। यह इस बात का प्रमाण है कि श्री चतुर्वेदी जी का प्रभाव युग के हृदय पर दूर तक पड़ा था।

मेरे परम मित्र भाई नर्मदा प्रसाद जी खरे ने चतुर्वेदी जी के वियोग में अनेक गीतों की रचना की है। ये रस्म-अदाई के गीत नहीं हैं, बल्कि वे नर्मदा प्रसाद जी के हृदय की अतल गहराई से निकले हैं, वे उनकी श्रद्धा के स्वर हैं, वे उनकी कृतज्ञता के आंसू हैं। केवल इतना ही नहीं, वे गीत मेरे भी हैं, वे उन सभी कवियों के गीत हैं जो माखन लाल जी के जीवन और कृतित्व से प्रेरणा लेते थे।

इस संग्रह का प्रत्येक गीत साहित्य के रस में भीगा हुआ है। कई स्थलों पर इन गीतों की कड़ियाँ माखन लाल जी की पंक्तियों की याद दिलाती है।

कैदी से नाता टूट गया,
कोकिल बेचारी रोती है।

गीतों की इस छोटी-सी अद्भुत पुस्तक के लिए मैं भाई नर्मदा प्रसाद जी को हार्दिक बधाई देता हूँ। इन गीतों में वे हम सब का, एक पूरे युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि जिस व्यथा को उन्होंने वाणी दी है वह हम से प्रत्येक की व्यथा है, पूरे इस युग की व्यथा है।

जब मेरा प्रथम काव्य-संग्रह 'रेणुका' के नाम से निकला था, पूज्य चतुर्वेदी जी ने उसकी भूमिका लिखने की कृपा की थी। अजब संयोग कि आज मैं उनके श्राद्ध में प्रकाशित होने वाले गीत-संग्रह की भूमिका लिख रहा हूँ।

कवि अपनी कविताओं में उसी प्रकार समाया रहता है जैसे ब्रह्म सृष्टि के भीतर समाया हुआ है। अतएव, शारीरिक विरह सचमुच में विरह नहीं है।

तुम्हें गीत में पा लेता हूँ,
जब-जब याद तुम्हारी आती,
गीत तुम्हारे गा लेता हूँ॥

'मरण-त्यौहार' की कविताएँ लाजवाब हैं। कवि ने भोगी हुई अनुभूतियों को वाणी दी है। इसी से गीत इतने सजीव और बेधक हो उठे हैं। इस संग्रह की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

———

देवता बोले, न बोले

भग्न मंदिर का भले ही, देवता बोले, न बोले,
शंख तो बजते रहेंगे, अर्चना होती रहेगी।

मुकुट टूटा, मूर्ति टूटी, भावना फिर भी न टूटी,
गाँव छूटा, गली छूटी, स्नेह की थाती न छूटी,
फूल झर, भू चूम लेता, सुरभि-साँसें बिखर जातीं-
काल सब कुछ लूटता है, पर कभी क्या गंध लूटी ?

प्राण-पिक अब तो भले ही, कंठ निज खोले, न खोले,
गीत के दीपक जलेंगे, प्रार्थना होती रहेगी।

हर समर्पित साँस को तुम, जानते-पहचानते थे,
मातृ-भू को ही सदा सर्वस्व अपना मानते थे,
मनुज में देवत्व देखा, विश्व को भुज में समेटा,
अमंगल से जूझते थे, प्रलय से रण ठानते थे,

मधुर सम्बोधन भले ही, मधुरता घोले, न घोले,
स्नेह के विश्वास की आराधना होती रहेगी।

अमरता तुमने न चाही, कीर्ति की कब कामना की ?
क्षितिज के नव द्वार खोले, स्वप्न को संभावना दी ,
कोकिला से गीत माँगे, किरन से सपने सलोने ,
तिलक मिट्टी का लगा कर, युगों को बलि-भावना दी ।

बीन का वादक भले ही झूम कर डोले, न डोले ,
अश्रु के अक्षत चढ़ेंगे, वन्दना होती रहेगी ।



चरण-चिह्न शेष हैं

चरण लोप हो गये, चरण - चिह्न शेष हैं ,
जो हमें पुकारते ।

हाथ में मशाल ले, ठाट से सदा चला ।
अन्धकार चीरता, दीप-सा सदा जला ।
बन्धन को तोड़ने, बन्धन स्वीकारता ।
आग पर सदा चला, आग को पुकारता ।
मातृ-भूमि त्याग कर, वीर क्यों चला गया ?
मातृ-भूमि त्याग कर, धीर क्यों चला गया ?
चाह पूर्ण हो गयी, फूल पंथ पा गया ।
देश मुक्त कर गया, विजय-गीत गा गया ।

नयन बंद हो गये, अश्रु-बिन्दु शेष हैं ,
जो हमें निहारते ।

बाग सिसकता रहा, राज - पुष्प झर गया।
धरती को चूम कर, मौन नमन कर गया।
मिट्टी में जन्म पा, मिट्टी में मिल गया।
मातृ-भूमि रो उठी, आसमान हिल गया।
दीप स्वयं बुझ गया, आरती सजा गया।
स्वयं मौन हो गया, शंख-ध्वनि गुँजा गया।
साँस-साँस फूँक कर, बाँसुरी जगा गया।
एक-एक शब्द में, ज्योति-लौ लगा गया।

अधर मौन हो गये, शब्द-गीत शेष हैं,
जो हमें दुलारते।

राष्ट्र की पुकार पर, वह कभी रुका नहीं।
प्रलय के, विनाश के, सामने झुका नहीं।
शीश-दान के लिए, वह सदा खड़ा रहा।
प्राण-दान के लिए, वह सदा अड़ा रहा।
नयन सब भरे रहे, अश्रु-बिन्दु ढल गया।
अस्त्र सब धरे रहे, काल-बाण चल गया।
नीड़ देखता रहा, प्राण-विहग उड़ गया।
जननि के किरीट का एक नग उखड़ गया।

कर निचेष्ट हो गये, कुशल कर्म शेष हैं,
जो हमें सँवारते।
चरण लोप हो गये, चरण-चिह्न शेष हैं,
जो सदा पुकारते।



कीर्ति-कलश शेष हैं

काल के प्रहार ने मुकुट तो गिरा दिया,
कीर्ति-कलश शेष हैं।

ईंट-ईंट जोड़ कर, उच्च महल तानते।
मिट्टी की देह को जीवन-धन मानते।
बूँद-बूँद जोड़ कर, सागर अनुमानते।
अंजुलि भर नीर को, केवल पहिचानते।
ईंट-ईंट गिर पड़ी, बूँद-बूँद चुक गयी।
देह पड़ी रह गयी, प्राण-ज्योति बुझ गयी।
हंस था अभी यहीं, अभी-अभी उड़ गया।
तार टूट कर अभी, और कहीं जुड़ गया।

काल के प्रवाह ने महल तो ढहा दिया,
कीर्ति-कलश शेष हैं।

पन्थ अभी शेष है, पथचारी सो गया।
शूल-शूल बीन कर, फूल-फूल बो गया।
दर्पण-सा टूट कर, खंड-खंड हो गया।
प्यारा प्रतिबिम्ब भी उसमें ही खो गया।
याद में बसा हुआ, गाँव छोड़ चल दिया।
साँस से बँधा हुआ, साँस तोड़ चल दिया।
प्रेम में रँगा हुआ, रंग निज चढ़ा गया।
स्वयं रुक गया मगर युग-चरण बढ़ा गया।

काल की कृपाण ने लाल को सुला दिया,
कीर्ति-कलश शेष हैं।

शब्द तो अशेष हैं, कलम टूट, गिर गयी।
एक-एक अक्षर में, स्वर्ण-रेख भर गयी।
शब्द मुखर हो रहे, कंठ रुद्ध हो गया।
गीत जागते सभी, गीतकार सो गया।
गीत ध्वनित हो रहे, कवि न मगर बोलता।
एक बार क्यों नहीं, अधर-द्वार खोलता?
एक बिन्दु था स्वयं, सिन्धु में समा गया।
अमर ज्योति की शिखा, राष्ट्र को थमा गया।

चंड काल-दंड ने क्या नहीं मिटा दिया?
कीर्ति-कलश शेष हैं।



कोकिल बेचारी रोती है

कैदी से नाता टूट गया, कोकिल बेचारी रोती है।

अब किसकी काल-कोठरी में, जी का दुलार पहुँचायेगी?
किसके मन से अपने मन के, गा-गा कर तार मिलायेगी?
अब किसकी हूकों पर अपनी हूकों का ज्वार उठायेगी?
अब किसके प्राणों पर अपने गीतों का अर्घ्य चढ़ायेगी?

सुनसान अँधेरी रातों में अपने दीपित स्वर बोती है।
कैदी से नाता टूट गया, कोकिल बेचारी रोती है।

सचमुच पहरे पर पहरे थे, साँसों की गिनती होती थी।
सिरहाने मौत खड़ी रहती, नित भूख साथ में सोती थी।
अपमान, उपेक्षा, लाचारी, बदनाम जिन्दगी ढोती थी।
बेड़ियाँ रूठने लगती थीं, हथकड़ी हाथ में रोती थी।

कुछ यादें हैं, कुछ आँसू हैं, कुछ पाती है, कुछ खोती है।
कैदी से नाता टूट गया, कोकिल बेचारी रोती है।

अब कौन कोकिला के स्वर पर, स्वप्नों की मणियाँ वारेगा ?
कारागृह की दीवारों पर अन्तर के चित्र उतारेगा ?
अब कौन मौन - सन्नाटों में, गुनगुना उठेगा, गायेगा ?
सूली पर चढ़ने वालों को अपना आराध्य बनायेगा ?

सूनी अमराई में अब तो, सुधियों के हार पिरोती है।
कैदी से नाता टूट गया, कोकिल बेचारी रोती है।

अब कौन सींकचों में रह कर, संगीनों को ललकारेगा ?
प्रज्वलित अग्नि - छंदों में फिर विप्लव-विद्रोह उतारेगा ?
अब कौन अकम्पित अपनी लौ से तम की छाती छेदेगा ?
वाणी की वरद हथेली पर, ब्रह्मांड समूचा ले लेगा ?

केवल रोना ही हाथ रहा, रोती है, हृदय भिगोती है।
कैदी से नाता टूट गया, कोकिल बेचारी रोती है।



[सन् १९३० में स्व० पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने जबलपुर-जेल में 'कैदी और कोकिला' नामक अमर काव्य-कृति की रचना की थी। उन्हें काल-कोठरी का भी दण्ड दिया गया था। कारागृह में अब भी वह आम का वृक्ष विद्यमान है, जिस पर बैठी कोकिला गाया करती थी।]

जाग रहे साहित्य-देवता !

लूट लिया सर्वस्व काल ने, कलश गिरा, मंदिर भी टूटा,
फिर भी तुम तो नयन-नयन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

कागज फटा, लेखनी टूटी, पर अक्षय साहित्य तुम्हारा,
अक्षर-अक्षर चमक रहा है, जैसे जीवन का ध्रुवतारा।
हृदय-रक्त से युग-पृष्ठों पर अंकित की अंतर की भाषा,
आँसू के छंदों में लिख दी, तुमने जीवन की परिभाषा।

जीवन का कल्लोल चुक गया, सूख गयी निर्मल जल-धारा,
सुरभि-साँस बन, सुमन-सुमन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

कला-प्राण, साहित्य-प्राण थे, कला तुम्हारे आँगन फूली,
तुमको पा प्रतिभा सुहासिनी, मुग्ध हुई नभ में चढ़ भूली।
हृदय-सिंधु में ज्वार उठा जब, कलम उठा, कविता रच डाली।
स्वर-धारा से स्वरित-हरित हो, फूल उठी गीतों की डाली।

उल्टी हवा बही अनजाने, बुझा गयी प्राणों का दीपक,
किन्तु आज भी किरन-किरन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

गद्य-गीत लिखने बैठे तो भावों के सुर-धनु उग आये।
अश्रु-बिन्दु कागज पर चमके, मूक वेदना ने स्वर पाये।
शब्द-शब्द में जादू जागा, अनाहूत ही माधव आया–
पंक्ति-पंक्ति में सूझें फूलीं, फूलों ने त्यौहार मनाया।
उजड़ गया किरणों का मेला, लहरों का हो गया विसर्जन।
हृदय-हृदय, धड़कन-धड़कन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

तुम स्वच्छन्द सरस निर्झर-से, बंदीगृह में भी गाते थे,
खारे पानी के झरनों से, गीत-गीत को नहलाते थे।
अनजाने मलार गा उठते, बेमौसम सावन आ जाता,
गीतों की फुलझरियाँ झरतीं, अंधकार मणियाँ पा जाता।
सूख गया जैसे स्वर-सागर, बिखर गयी गीतों की लड़ियाँ,
प्राण-प्राण के वृन्दावन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

हिमगिरि को गर्वोन्नत करने, गीत लिखे, विद्रोह जगाये,
बलि-पथ का अंगारा बनकर, तूफानों में पंख लगाये।
अन्यायों के शीश काटने, शीश कटाने आगे आये,
कष्टों की गर्दन मरोड़ने, बलिदानों को मंत्र पढ़ाये।
सहसा टूट गयी स्वर-लहरी, गीतों का आकाश झुक गया,
मधुर भावना के मधुवन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

कला-तीर्थ-वाणी-मन्दिर में, पूजन - अर्चन - वंदन होगा,
अधर-अधर पर गीत रहेंगे, युग-युग तक अभिनन्दन होगा।
कालजयी ! साहित्य तुम्हारा, सदा पीढ़ियाँ पढ़ा करेंगी,
नयी प्रेरणायें पा तुमसे, नयी सीढ़ियाँ चढ़ा करेंगी।
काल-रात्रि में लीन हो गयी, रागमयी जीवन की संध्या,
नव-प्रभात बन, धरा-गगन में, जाग रहे साहित्य-देवता।

★

मेरे गीतों के प्रणाम लो।

मेरे गीतों के प्रणाम लो।

गीत स्वयं अपने स्मारक हैं, भाव - भूमि पर खड़े रहेंगे,
वज्र प्रहारों के सम्मुख भी सिर ऊँचा कर अड़े रहेंगे।
गीतों में मन की मूरत है, प्रस्तर-प्रतिमा का क्या होगा ?
गीत स्वयं महिमा-मंडित हैं, झूठी महिमा का क्या होगा ?
गीत स्वयं में ज्योतिर्मय हैं, गीत स्वयं ही किरनीले हैं,
फिर भी दीपों के प्रणाम लो।

मन-आँगन में बालकृष्ण-से गीत तुम्हारे ठुमक रहे हैं,
पैजनियों के स्वर ही जैसे, मन - प्राणों में छुमक रहे हैं,
चारु-चन्द्र-से सहज सलोने गीत सदा अमृत झरते हैं,
किरन-किरन में मुखरित-से हो, मन का सूनापन भरते हैं,
गीतों में ममता का सागर, गीतों में जीवन की गंगा,
फिर भी मेघों के प्रणाम लो।

गीत तुम्हारे अग्नि-पुञ्ज हैं, ज्वालामुखी जगा सकते हैं,
सागर की सोयी लहरों में, बड़वा-अनल बहा सकते हैं,
भटकी हुई सुबह गीतों से अपनी मंजिल पा सकती है,
सोयी हुई रागिनी युग की अब भी फिर से गा सकती है,

गीतों में तूफान छिपे हैं, गीतों में विद्रोह सुलगते,
मूक विप्लवों के प्रणाम लो।

मंदिर, मसजिद, राजमहल सब, जीर्ण-शीर्ण हो ढह जायेंगे,
जाने कितने ताजमहल भी महाप्रलय में बह जायेंगे,
गीत-वितानों के नीचे हम, जीवन-गीता सदा पढ़ेंगे,
मन के सुमन, अश्रु के अक्षत, गीतों के पद-पद्म चढ़ेंगे,

गीतों में हिमगिरि का गौरव, गीतों में विन्ध्या का वंदन,
फिर भी टीलों के प्रणाम लो।



शायद तुमने भी रोया है

गीत उदासी में डूबे हैं, खोये-खोये सिसक रहे हैं–
शायद तुमने भी रोया है।

रंगों का त्यौहार आज है, हृदय-हृदय ने बीन बजायी,
हम कृतघ्न क्या याद करेंगे, तुमको ही बरबस सुधि आयी।
अंतर के कुंकुम-गुलाल से, हर पलाश के गाल लाल कर,
वन-वन सुषमा से धोया है।

रंग-भरे बादल बरसे हैं, मन-आँगन गीले-गीले हैं,
मौसम के सब नये वसन भी, लाल-लाल, पीले-पीले हैं।
इस वासन्ती मधुबेला में, दूर कहीं तुमने भी गा कर,
कण-कण में जीवन बोया है।

गीतों का मधुवन फूला है, मधुवन में तुम डोल रहे हो,
रंगों की बोली में जैसे मधुर-मधुर कुछ बोल रहे हो।
कभी नयन में हँस देते हो, कभी हृदय में रो उठते हो,
तुमको पा-पा कर खोया है।

घाव हरे हैं, मन भारी है, नेह - नगर सूना लगता है,
राग-रंग की इन घड़ियों में, मन का दुख दूना लगता है।
साँस-साँस का कर्ज चुकाने, अभी-अभी गाता था गायक,
अभी-अभी गा कर सोया है।



आधार खो गया है

सूना महल सिसकता, कवि तो चला गया है।
अनगिनत पंक्तियों के दीपक जला गया है।
वे पंक्तियाँ अमर हैं, युग - पीढ़ियाँ पढ़ेंगी—
पिक के मधुर निवेदन, मधु घोलते नहीं हैं।

स्वर - छिद्र बाँसुरी के अब मौन हो गये हैं।
वीणा न गूँजती है, सब तार सो गये हैं।
स्वर-साधना अभी तो अविराम चल रही थी,
अम्बर - अधर रसीले, रस ढोलते नहीं हैं।

निस्सीम दूरियों को दो चरण नापते थे।
निष्कम्प प्राण-लौ से तम-तोम काँपते थे।
वे चरण रुक गये अब, आलोक खो गया है,
पंछी निपट अकेले, नभ तोलते नहीं हैं।

वन-विजन-वीथियों का मधुमास खो गया है।
मन-सुमन-घन-किरन का मधु-हास खो गया है।
कण-कण उदास-सा है, भू-भुवन रो रहा है,
मन के मयूर जाने क्यों डोलते नहीं हैं।

आकाश है, कलश है, आधार खो गया है।
हर दिशा रो रही है, विस्तार खो गया है।
थी प्रार्थना अधूरी, पूजा हुई न पूरी,
छवि में अँजे नयन वे, पट खोलते नहीं हैं।



अक्षरों के दीप तो जलते रहेंगे

अक्षरों के दीप तो जलते रहेंगे।

मरण जीवन से जुड़ा है, कलम भी तो टूटती है,
उम्र की दावात आखिर एक दिन तो फूटती है।
हम भले ही पत्थरों पर नाम अपना लिखा जायें,
एक दिन स्याही बिचारी बिन छुटाये छूटती है।

प्राण की बाती भले ही बुझ गयी हो,
अक्षरों के दीप तो जलते रहेंगे।

कभी सुरपुर त्यागने का मंत्र तुमने ही दिया था,
बेड़ियाँ गहना बनी थीं, जुल्म से लोहा लिया था।
सिर हथेली पर लिये तुम, मरण-पथ पर चल पड़े थे,
नाश को देकर चुनौती, क्या नहीं तांडव किया था?

वे चरण अब तो भले ही रुक गये हों,
युग-चरण फिर भी सदा चलते रहेंगे।

तुम भले ही सो गये हो, गीत अब भी जागते हैं,
प्रेरणा के बोल, युग से शीश अब भी माँगते हैं,
काव्य का चाहे हिमालय अचानक ही गल गया हो,
ज्योति-विहगों के सुनहले पंख नभ को नापते हैं,

बाँसुरी-वादक भले ही खो गया हो,
शून्य में स्वर तो सदा पलते रहेंगे।

विप्लवी मनुहार की धुन, आज भी हम गुनगुनाते,
दूर रह कर पास के भी जोड़ते हैं नेह-नाते,
स्वयं से ही रूठ कर तुम, आँख से ओझल हुए हो,
पुतलियों में तैरते हो, हम न तुम को भूल पाते,

दूर, वनमाली भले ही चल दिया हो,
प्यार के पौधे सदा फलते रहेंगे।



तुम कैसे उस पार चल दिये ?

तट पर रोती भीड़ छोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?

सिर से कफन बाँध कर तुमने
आजादी की लड़ी लड़ाई,
ज्वालामुखी बने, भड़के तुम,
जन-जन में ज्वाला भड़काई,
बलि-पथ पर बढ़ना सीखा था,
कभी न तुमने मुँहकी खाई,

मृत्यु-प्रिया से गाँठ जोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?
तट पर रोती भीड़ छोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?

स्वयं खाद बन-बन कर तुमने
नये बीज बो, फसल उगायी ,
नयी-नयी कलमों को तुमने
मुकुट दिये, माला पहिनायी ,
अनासक्त, निर्पेक्ष भाव से
ममता की बदली बरसायी ,

नेह-नगर का मोह तोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?
तट पर रोती भीड़ छोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?

काव्य - साधना की भट्ठी में
सूझों की हर साँस गलायी ,
भावों की जयमाला हँस कर
राष्ट्र-भारती को पहिनायी ,
स्वयं समर्पण बनने में ही
सिद्धि - सफलता - पूजा पायी ,

जीवन-घट चुपचाप फोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?
तट पर रोती भीड़ छोड़ कर, तुम कैसे उस पार चल दिये ?



ह दिन कैसे भूल सकूँगा ?

उस दिन स्वयं हिमालय उठकर ,
मेरे आँगन में आया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा ?

उस दिन ऐसा लगा कि जैसे–चट्टानों पर फूल खिले हैं ,
उस दिन ऐसा लगा कि जैसे–कब के बिछुड़े मीत मिले हैं ,
उस दिन ऐसा लगा कि जैसे–पत्थर को भी प्राण मिल गये ,
उस दिन ऐसा लगा कि जैसे–बिन माँगे वरदान मिल गये ।

उस दिन नंदन-वन पुलकित हो ,
कंटक-वन में मुसकाया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा ?

कान्तिमयी हँसती मुख-मुद्रा, बिन बोले ही बोल रही थी,
नीली झील सरीखी आँखें, जिनमें ममता डोल रही थी,
पुतली में सपनों की कविता, जादू-सा कुछ घोल रही थी,
वाणी, जैसे शब्द-शब्द के, नये अर्थ ही खोल रहीं थी।
उस दिन स्वयं वसन्त झूम कर,
मेरी कुटिया पर छाया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा।

नहीं जानता, तुम में क्या था, मैं अपने को भूल गया था,
नहीं जानता, तुम में क्या था, जो मेरा मन फूल गया था,
नहीं जानता, तुम में क्या था, चिर-परिचित-से लगे प्राण को–
मूर्त हुए युग-युग के सपने, लक्ष-लक्ष स्वर मिले गान को।
उस दिन बिना बुलाये पाहुन,
मेरे जीवन में आया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा।

तुम को पा, परिवार हमारा, मुग्ध-मगन हो झूमा करता,
तुम को पा, संसार हमारा, नभ को जैसे चूमा करता,
तुम को पा, कलियाँ खिल जातीं, फूलों पर मधुमास उतरता–
मन को मोती मिल जाते थे, घर भर में उल्लास बिखरता।
उस दिन स्नेह भरे बादल ने,
मरुथल में रस बरसाया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा।

अपनी पूजा-पावनता से कलुष-कालिमा धो देते थे,
टूटे मन आहत अन्तर में, नयी उमंगें बो देते थे,
स्नेह-सिक्त व्यक्तित्व तुम्हारा, अलग अकेला बोला करता,
स्नेह-सिक्त व्यवहार तुम्हारा, अमृत-सा कुछ घोला करता।
प्रेम-अधीरा मीरा का मन,
उस दिन अनचाहे पाया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा।

हलों से विद्वेष नहीं था, पर कुटिया ही अपनाते थे।
न, मलीन मनुज में ही तुम, प्रियतम की झाँकी पाते थे।
न आते तो ऐसा लगता, जैसे सावन बरस गया हो।
न जाते तो ऐसा लगता, जैसे मधुवन झुलस गया हो।
त दिन स्वयं द्वार पर मेरे,
रुणा-सागर लहराया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा?

लम पकड़ना सीख रहा था, छंदों का कुछ ज्ञान नहीं था।
व और भाषा दोनों का रत्ती भर भी भान नहीं था।
च्ची माटी का लौंदा था–गुण का नाम-निशान नहीं था।
हे गुञ्जित प्राण रहे हों, अधरों पर मधु-गान नहीं था।
स दिन सूझों के स्वामी ने,
रे कवि को दुलराया था, वह दिन कैसे भूल सकूँगा?



विद्रोह लिखा, बलिदान लिखा

जीवन के कोरे कागज पर, साँसों की स्याही से तुमने—
विद्रोह लिखा, बलिदान लिखा।

छोटी-सी एक कलम जग कर, अनगिनत गुलाब खिलाती है।
अपनी सुरभीली साँसों से काँटों का दर्द भुलाती है।
मिट्टी में गड़ती, हरियाती, सिर ऊँचा कर मुसकाती है।
परिमल-पराग के मेले में, मिट्टी की महिमा गाती है।

पथरीली, परती धरती पर, आँसू के दाने बो-बो कर—
हिम-हास लिखा, मधु-गान लिखा।

जल-स्रोत निरन्तर आगे बढ़, निर्झर बनते हैं, गाते हैं।
चट्टानों के सिर तोड़-तोड़, बीहड़ में पंथ बनाते हैं।
नीचे गिर, ऊँचे उठते हैं, क्रोधातुर हो, उफनाते हैं।
रवि की किरणों से खेल-खेल, भू पर सुरचाप उगाते हैं।

निर्धूम प्रज्वलित ज्वाला में जीवन भर जल-जल कर तुमने—
संकल्प लिखा, संधान लिखा।

मिट्टी का नन्हा एक दीप, तिल-तिल जल, तम से लड़ता है।
काली रजनी की आँखों में, जाने क्यों हर क्षण गड़ता है!
नभ के दीपों से होड़ लगा, उर का आलोक लुटाता है।
बुझने के पूर्व धरा पर वह, स्वर्णिम प्रभात ले आता है।

किरणों के झलमल पंखों पर, गीतों के जादू से तुमने—
अभ्युदय लिखा, उत्थान लिखा।

दूर्वा का अंकुर एक दिवस, धरती की शोभा बनता है।
शबनम के मोती पाता है, फूलों के मुकुट पहिनता है।
अपने प्राणों की हरियाली, वह सभी ओर छा देता है।
चुपचाप मौन की वंशी में, जीवन-कविता गा देता है।

टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर, विश्वासों का पाथेय लिये—
अनुगमन लिखा, अभियान लिखा।

केसर के पौधों की लघिमा, गरिमा के शीश झुका देती।
अनगिन फूलों की गोदी में, स्वर्णिम आकाश लुका देती।
अनजाने क्यारी-क्यारी पर सोने की धूल बिखर जाती।
गंधों की भीड़ पवन पर चढ़, प्रियतम के धाम उतर जाती।

जीवन की झीनी चादर पर, आँसू की मणियाँ बिखरा कर—
अनुराग लिखा, अवसान लिखा।



आँखों में प्रतिक्षण झूल रहे

आँखों में प्रतिक्षण झूल रहे–
आँखों से ओझल हो कर भी, आँखों में प्रतिक्षण झूल रहे।

सतपुड़ा-शिखर सिर धुनते हैं, विन्ध्या का शीश झुका-सा है।
नर्मदा सिसकियाँ भरती है, झरनों का नाद रुका-सा है।
वनराजि-वीथियाँ-वल्लरियाँ मुरझायी, खोयी-खोयी हैं।
चिड़ियाँ बेचारी अभी-अभी, रोती-बिसूरती सोयी हैं।

हम तुम को भूल नहीं पाते, तुम कैसे हम को भूल रहे?

पत्तियाँ चुटकियाँ बजा-बजा, जंगल में किसे बुलाती हैं?
डालियाँ भुजायें फैलाये, किस लिए कहो, अकुलाती हैं?
तरु-वृन्द खड़े पथ हेर रहे, तृण-तृण में क्यों आकुलता है?
सन-सन-सन मारुत डोल रहा, पत्तों में क्यों व्याकुलता है?

शूलों के शीश उतारे थे, फूलों में बन कर फूल रहे।

कलियों की पलकें गीली हैं, फूलों पर घनी उदासी है।
हरियाली सूखी-सूखी-सी, तितली भी आज रुआसी है।
भौंरों का गुन्जन छूट गया, गंधों का मेला लगा नहीं।
माधव बिन गाये लौट गया, कोकिल का स्वर भी जगा नहीं।

अनगिन सुधियों के तीक्ष्ण शूल, प्रतिपल अन्तर में हूल रहे।

ग्वालिनियाँ ठगी-ठगी-सी हैं, मटकियाँ हाथ से छूट गयीं।
अपशकुन हुआ, जाने कैसे, चूड़ियाँ हाथ की फूट गयीं।
छा गया अँधेरा आँखों में, आ गया पसीना माथों में–
दधि-मंथन जैसे भूल गयीं, रुक गयी मथानी हाथों में।

तुम संग-संग ही बहे सदा, क्यों एक बार प्रतिकूल बहे?

गाँवों पर जैसे गाज गिरी, सब कुछ उजड़ा-सा लगता है।
गलियाँ गुमसुम हैं, सूनी हैं, सब कुछ बिगड़ा-सा लगता है।
बच्चे-बूढ़े सब बिलख रहे, घर-घर मातायें रोती हैं।
पनघट भी सूना-सूना-सा, वधुएँ-बालायें रोती हैं!

वे सभी लहरियाँ रोती हैं, तुम बन कर जिनके कूल रहे।

खूँटों से बैल बँधे हैं सब, हल-बखर न कोई छूता है–
कोई न किसी से बोल रहा, आँखों से पानी चूता है।
चिलमों में आग न दिखती है, कोई न नारियल पीता है।
सब ओर एक सन्नाटा है, जैसे सब रीता-रीता है।

तुम गेहूँ और गुलाबों पर, क्यों नहीं आज फिर फूल रहे ?

अधरों पर नाम तुम्हारा है, आँखों में खारा पानी है।
बस, एक तुम्हारी चर्चा है, गाथा पूरी बलिदानी है।
तुम स्वयं मील के पत्थर-से, बलिदान-पंथ पर गड़े रहे–
हाँ, महाकाल के सम्मुख भी, गर्वोन्नत हँसते खड़े रहे।

विक्षुब्ध तरंगों से जूझे, पर नाविक के अनुकूल रहे।



उस दिन फिर से पत्र पढ़े जब...

उस दिन फिर से पत्र पढ़े जब, जाने कितने फूल झर गये !

पत्रों से झरने झरते थे, शीतलता में नहा रहा था।
मौन रात्रि के सन्नाटे में मैं भी निर्झर बहा रहा था।
शब्दों के सागर में डूबा, सीप मिले, मोती भी पाये।
यादों में फिर पीके फूटे, बीते दिन फिर से अँकुराये।

सूनेपन में भीड़ जुट गयी, अनजाने ही शून्य भर गये !

झड़ी लगी थी, कण-कण गीला, फिर भी शोले दहक रहे थे।
सूखे सुमन, अतीत सुनहले, जाने कैसे महक रहे थे।
अन्तर्मन एकाकी, गुमसुम, हृदय-गगन में झाँक रहा था।
आहत अन्तर पर सुधियों के, अनगिन सुरधनु आँक रहा था।

बिन मुहूर्त मन गयी दिवाली, द्वार-द्वार पर दीप धर गये।

पंक्ति-पंक्ति में प्रीति पगी थी, ममता हृदय टटोल रही थी।
स्वयं बोलते-से लगते थे, अन्तर्ध्वनि स्वर खोल रही थी।
प्यार भरे मीठे सम्बोधन, जैसे अब भी बुला रहे हों।
स्नेह-पाश में मुझे जकड़ कर, जग के बन्धन भुला रहे हों।

जगा गये सोयी संज्ञायें, मधुर विशेषण हरे कर गये।

तुमने कभी लिखा था मुझको–'जीवन पूर्ण जिया जाता है,
क्या किश्तों में बाँट-बाँट कर–प्यार-दुलार दिया जाता है?
बादल क्या किश्तों में झरते? कलियाँ क्या किश्तों में खिलतीं?
नदियाँ पूर्ण समर्पित हो कर, एक बार सागर में मिलतीं।'

अभिमंत्रित जीवन-सूत्रों से उमस, घुटन, उत्ताप हर गये।

पत्र नहीं, वे काव्य-कोश हैं– रत्नों का भंडार भरा है,
जीवन की मणियाँ बिखरी हैं, भावों का संसार भरा है।
कभी कहीं रोते-गाते हो, कभी कुपित भी हो जाते हो,
सदा प्रेरणा ही देते हो, संबल बन दौड़े आते हो।

पत्र-पत्र में तुमको पाकर, मन के सारे क्लेश मर गये।



तुम्हें गीत में पा लेता हूँ

तुम्हें गीत में पा लेता हूँ।
जब-जब याद तुम्हारी आती,
गीत तुम्हारे गा लेता हूँ।

गीत-गीत में बसे हुए हो,
पंक्ति-पंक्ति में बोल रहे हो।
शब्द-शब्द की काव्य-मधुरिमा
प्राण-प्राण में घोल रहे हो।
बिनत नमन-वंदन करते हो,
मुसकानें बिखरा देते हो।
पुलकित हो, अपनी पलकों पर
सारा जग बैठा लेते हो।
गीतों के रस भरे मेघ में,
अन्तर्नभ में छा लेता हूँ।

कभी पाटलों में गा देते,
हरसिंगार झरने लगते हो।
जुही, चमेली, चंपा में तुम
सुरभि-साँस भरने लगते हो।
कली-कली में चटख-चटख कर
भूमि-भुवन बहका देते हो।
फूल-फूल में महक-महक कर
दिगदिगन्त महका देते हो।
गीतमयी मुसकानों से मैं,
मन के सुमन खिला लेता हूँ।

गीत नहीं, जैसे बसन्त ही
मेरे सम्मुख झूमा करते।
कुंज-कुंज में बौराये-से
मोर-मुकुट ले घूमा करते।
झोली में परिमल-पराग भर
प्रियतम-पथ में बिखराते हो।
प्राण-बाँसुरी के पंचम में
गीत वंदना के गाते हो।
गीत-गीत के पावक-कण से
प्राण-ज्वाल सुलगा लेता हूँ।

कभी वेदना-विह्वल हो कर
करुणा-विगलित हो उठते हो।
भूखे, नंगे मनुज देख कर–
द्रवित-हृदय हो, रो उठते हो।
गीत-गीत आलोक-पुञ्ज हैं
तुम आलोक झरा करते हो।

किरणों की अनगिन बाँहों में
सारा विश्व भरा करते हो।
गीत-पगे अनुरागी स्वर से
अन्तर्ज्योति जगा लेता हूँ।

कभी स्वयं प्रलयंकर बन-बन
रणभेरी का नाद गुँजाते।
स्वयं नाश को न्यौता देते
और मरण-त्यौहार मनाते।
प्रलय-पंथ पर अग्नि-चरण धर
निर्भय आगे बढ़ते जाते।
मातृ-भूमि पर बलि होने की
साक्षी दे-दे होड़ लगाते।
गीतों की निर्धूम शिखा से
जीवन-ज्योति जगा लेता हूँ।

गीतों में विद्रोह जागता
विप्लव-गान सदा गाते हो।
संकट की सूली पर तुम तो
हँसते-गाते चढ़ जाते हो।
राष्ट्र तुम्हारा काव्य-देवता
गीत-गान ही आराधन है।
मानवता ही सच्ची पूजा
भारत की रज ही चंदन है।
गीतों के पूजन-वन्दन से
सारे ताप मिटा लेता हूँ।



अति उग्र निडर सम्पादक थे

हर लेख तुम्हारा अग्नि-पुञ्ज, हर शब्द तुम्हारा अग्नि-बाण;
जब अपने-आप भड़क उठते,
नभ शोले बोने लगता था।

अति उग्र निडर सम्पादक थे,
अन्याय-अनय से लड़ते थे।
प्राणों का दाँव लगा कर तुम
सत्ता से सीधे भिड़ते थे।
तुम पथ-संधान सुझाते थे,
निर्भय हो आगे बढ़ते थे।
निज लौह-लेखनी से युग का
इतिहास नया तुम गढ़ते थे।
हर शब्द तुम्हारा वज्र-घोष, हर लेख तुम्हारा वज्र-प्राण,
जब अपनी पर आ जाते तो
भू-कंपन होने लगता था।

तब 'कर्मवीर' के शब्द-शब्द
जैसे शोले बन जाते थे।
तब 'कर्मवीर' के बोल-बोल
बलिदानी गीता गाते थे।
तब 'कर्मवीर' का हर 'कालम'
विप्लव का ज्वार उठाता था।
तब 'कर्मवीर' का अग्रलेख
शासन की नींव हिलाता था।
हर लेख तुम्हारा क्रांति-बीज, हर शब्द तुम्हारा क्रांति-चरण,
हुंकारें भरने लगते तो
अरि साहस खोने लगता था।

हर खबर आग की लपटों-सी
सब ओर आग भड़काती थी।
शासन की काली करनी की
नस-नस जैसे तड़काती थी।
दो पैसे वाली तेज कलम
हीरों की दमक मिटाती थी।
झुकने का नाम न लेती थी
जुल्मों के शीश झुकाती थी।
हर लेख तुम्हारा सिंहनाद, हर शब्द तुम्हारा युद्ध-नाद
जन-मानस पर छा जाते तो
अन्यायी सोने लगता था।

तूफानों के मुँह मोड़-मोड़
तुम मंजिल पर ले जाते थे।
दिग्भ्रमित उग्र तरुणाई के
बलि-पथ पर चरण बढ़ाते थे।

बापू के पथ पर चलते थे
मानवता को दुलराते थे।
जननी के मात्र पुजारी थे
पर विद्रोही कहलाते थे।

हर लेख तुम्हारा अश्रु-गीत, हर शब्द तुम्हारा अश्रु-बिन्दु,
जब अपनी आँखें भर लेते
तब भारत रोने लगता था।



देव नहीं, तुम तो मनुष्य थे

देव नहीं, तुम तो मनुष्य थे, मैं भी तुम्हें मनुष्य मानता,
किन्त तुम्हारे गीत-गीत में, सारा जग अनुमान रहा हूँ।

फूलों-से मुसकाते रहते, कभी-कभी मुरझा जाते थे।
स्नेह-कलश ढुलकाते रहते, कभी नयन भी भर लाते थे।
प्रतिपल जागरूक रह कर भी, कभी स्वयं में खो जाते थे–
सपनों की शीतल छाया में, कभी-कभी तुम सो जाते थे।

तट की एक लहर को कैसे मैं असीम सागर कह देता?
गीतों में सागर डूबे हैं, आज सही मैं मान ,रहा हूँ।

कर्म-कुशल थे, कर्मवीर थे, सदा कर्म में रत रहते थे।
धूप-छाँह में सहज भाव से, हर क्षण निर्झर-से बहते थे।
सुख से कभी न गर्वित होते, दुख से कभी न घबराते थे।
जीवन की दुर्बलता को भी मुक्त हृदय से दुलराते थे।

फुलवारी के एक फूल को कैसे मैं वसन्त कह देता?
गीतों में मधुमास छिपे हैं, अब तो मैं यह जान रहा हूँ।

राष्ट्र बना आराध्य तुम्हारा–राष्ट्र तुम्हारा स्वाभिमान था।
मानवता मन की गीता थी, विश्व तुम्हारा धर्म-प्राण था।
युग के कष्ट, विश्व की पीड़ा, काव्य-स्रोत थे, हृदय-गान थे।
आहत जननी की पुकार बन, कँपा रहे तुम आसमान थे।

सांसों के लघु दो तारों को, कैसे विश्व-प्राण कह देता?
गीत-गीत में आज तुम्हारे, विश्व-प्राण पहिचान रहा हूँ।

अपरिमेय उल्लास तुम्हारा, सूखे सुमन खिला देता था।
उत्फुल्लित उत्साह तुम्हारा, कर्मण्यता जिला देता था।
जागरूक तारुण्य तुम्हारा, युग को नये तरुण देता था।
बलि-पथ का आह्वान तुम्हारा, पथ को नये चरण देता था।

दो मुट्ठी मिट्टी को कैसे, मैं विराट पर्वत कह देता?
गीत हिमालय से ऊँचे हैं, उनका सुयश बखान रहा हूँ।

★

उस बचपन की बात न पूछो

जिस बचपन में कविता बोली,
उस बचपन की बात न पूछो।

निर्धनता का बाग लगा था, दुख के पौधे फूल रहे थे–
उसी बाग में तुम गुलाब-से, काँटों पर हँस-झूल रहे थे।
माँ की ममता आँसू पोकर, तुम पर प्यार उड़ेल रही थी–
उसी प्यार में डूबी कविता, शिशु-मानस में खेल रही थी।

जिस उपवन में कोयल बोली,
उस उपवन की बात न पूछो।

फूल तुम्हें प्यारे लगते थे, कलियाँ हृदय चुरा लेती थीं।
हरे खेत मन हर लेते थे, नदियाँ तुम्हें बुला लेती थीं।
फूलों का मौसम आता तो, स्वयं फूल-से खिल जाते थे–
झूम-मचल गाने लगते थे, कोकिल के स्वर मिल जाते थे।
स्वयं गीतमय जो जीवन हो,
उस जीवन की बात न पूछो।

गाँव-गाँव में रामायण पढ़, भीड़ जुटाना सीख गये थे।
सूरदास के पद गा-गा कर, तुकें मिलाना सीख गये थे।
कविता का जब भूत चढ़ा तो तुमने भी कविता रच डाली,
कविता क्या थी–तुकबंदी थी, नटखटपन था– मीठी गाली।
तुकबंदी द्वारे चिपका दी,
नटखटपन की बात न पूछो।

पढ़ने में तुम बहुत तेज थे, शुद्ध रहा करती थी वाणी,
तदपि शरारत सूझा करती, बहुधा करते थे शैतानी।
एक बार पंडित जी पर ही, तुकबंदी का बाण चलाया,
पंडित जी ने क्रोधित होकर, घूँसे दिये, बेत चमकाया।
बात-बात में अल्हड़पन था,
अल्हड़पन की बात न पूछो।

एक बार अपनी तुकबंदी, पीपल में लटका, घर आये,
जिस पर तुक थी वही पुजारी क्रोध भरे द्वारे पर आये।
बात-बात में बात खुली तब, चाँटे पड़े, पिटाई खाई–
उतर गया गुस्सा जब हँस दी उनकी सुता द्रौपदी बाई।
यह क्रम सदा चला करता था,
भोलेपन की बात न पूछो।

स्वयं एक दिन बैल बने थे, बिना हिचक गाड़ी खींची थी,
श्रम-जल की निर्मल धारा से गाँव-गली हँस कर सींची थी।
आग और आँसू ने मिल कर, तुम में कवि की ज्योति जगायी,
कवि-पुंगव तुम बने एक दिन, वाणी ने भी महिमा पायी।
नटखटपन था, कवि का मन था,
कवि के मन की बात न पूछो।



प्रस्तावना किससे लिखायें ?

जिन्दगी की भूमिका तुम तो निभा कर चल दिये–
अब कहो, प्रस्तावना किससे लिखायें ?

चटक रंगों पर न रीझे, सुरभि की पहचान की थी।
'रेणुका' को रश्मियों की दीप्तिमय मुस्कान दी थी।
'कनुप्रिया' पर मुग्ध हो कर 'भारती' के गीत गाये।
'विपिन' के सूने हृदय में 'साधना के स्वर' सजाये।

बाँसुरी में स्वर जगा, तुम तो स्वयं चुप हो गये,
स्वप्न की संभावना किससे लिखायें ?

जन्म की प्रस्तावना ही मरण की लिपि में लिखी है,
काल के प्रति निमिष-क्षण में नियति की हुंकृति छिपी है,
पलक - पलनों में पले अति लाड़ले खोते रहे हैं,
नित नये वट वृक्ष के हम बीज भी बोते रहे हैं,

मरण का पर्दा गिरा तुम मुस्करा कर छिप गये–
जन्म की शुभकामना किससे लिखायें ?

देहरूपी जीर्ण कपड़े मृत्यु ने ही तो उतारे,
बिना पतझड़ के न अब तक धरा पर ऋतुपति पधारे,
एक दिन यह कनक-काया भस्म होगी जानते थे,
इसलिए हर साँस अपनी, राष्ट्र की ही मानते थे।

आयु के अस्सी सुमन तुम तो चढ़ा कर उठ गये–
काव्यमय बलि-भावना किससे लिखायें ?

आँधियों से जूझ कर तुम नील नभ को चूमते थे,
वज्र - प्राणों की धुरी पर विप्लवी रथ घूमते थे,
धड़कनों के गीत तुमने लाल स्याही से लिखे थे,
मृत्यु का श्रृङ्गार करने, सज-सँवर आगे दिखे थे।

मातृ-भू का ऋण चुका तुम तो नमन कर चल दिये–
विश्व की संवेदना किससे लिखायें ?